गाथा (GAATHA)
स्त्री अस्मिता और विमर्श की सहकर्मी-समीक्षित, अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

ISSN : 3049-3463(Online)
Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025
Page No.- 01-05
©2025 Gaatha
https://gaatha.net.in
Author :

डॉ. अमरेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर-सह-विभागाध्यक्ष,
हिंदी विभाग,जगजीवन कॉलेज,
आरा,भोजपुर,बिहार.

Corresponding Author :

डॉ. अमरेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर-सह-विभागाध्यक्ष,
हिंदी विभाग,जगजीवन कॉलेज,
आरा,भोजपुर,बिहार.

कबीर के निर्गुनिया राम

शोध सार:-हिंदी साहित्य में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में 'राम' का व्यक्तित्व काव्य-सृजन का सर्वाधिक उपजीव्य विषय रहा है।वाल्मीकि,भवभूति, तुलसी,कबीर से लेकर आधुनिक हिंदी कविता में निराला तक राम को आधार बना कर महाकाव्यात्मक रचनाएं करने की एक सुदीर्घ एवं समृद्ध परंपरा रही है।किंतु सभी के अपने-अपने राम हैं।राम के प्रति सभी की अवधारणा भिन्न- भिन्न रही है।जहाँ तक कबीर के राम का प्रश्न है तो कबीर स्वयं कहते हैं,

"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,
राम नाम का मरम न जाना।"

कबीर के राम तुलसी के अवतारी राम नहीं हैं।तुलसी के राम दाशरथी राम हैं,जबकि कबीर की मान्यता हैं कि,जो लोग राम को दशरथ पुत्र मानते हैं वे तो राम के विषय में जानते तक नहीं हैं ।राम तो सम्पूर्ण संसार के जड़ और चेतन में रमण करने वाले हैं।कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी खुदा भी नहीं हैं। कारण, इस्लाम में ख़ुदा को संपूर्ण जगत एवं जीवों से जुदा एवं ज्यादा कुव्वत वाला माना गया है, जबकि कबीर के राम समर्थ हैं, पर समस्त जीव और जगत से अलग कदापि नहीं,वरन कबीर का ईश्वर तो। जगत में व्याप्त होते हुए भी प्रत्येक के हृदय में निवास करता है-

" व्यापत ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पण्डित को जोगी।
रावण-राव कवणसूं कवन वेद को रोगी।।"

वस्तुत: कबीर राम की अवधारणा को एक व्यापक, मानवीय एवं संवेदनशील स्वरुप देना चाहते हैं। श्यामसुंदर दास ने कहा है कि, "वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को भी दूर करने का प्रयत्न कबीर ने किया।" इस प्रकार कबीर के निर्गुण राम सिर्फ कण-कण में विद्यमान ही नहीं हैं, वरन

वे तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक बाह्य आडंबरों, जड़ परंपराओं, मान्यताओं से लड़ने तथा तमाम तरह के भेदभाव एवं विसंगतियों को समाप्त कर मानवतावाद की स्थापना का कारगर हथियार भी हैं। हमें कबीर के निर्गुण राम को उनके तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक,राजनैतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। आखिर, कबीर के समक्ष ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ एवं चुनौतियां थीं, जो उन्हें "दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।" को छोड़कर निर्गुण राम को अपनाना पड़ा। दरअसल, कबीर के समकालीन समाज में न केवल हिंदू- मुसलमानों के मध्य वैमनस्यता की ऊँची दीवारें थीं, बल्कि हिंदू धर्म में भी जाति-पाँति,छुआछूत एवं उच्च- नीच की गहरी खाई थी। कबीर के समक्ष यही चुनौतियां थीं, जहाँ निर्गुणोपासना के द्वारा वे अवतारवाद, मूर्तिपूजा,बहुदेववाद, उच्च- नीच, जाति-पाँति, छुआछूत आदि पर तीक्ष्ण प्रहार कर सकते थे। कबीर की दृष्टि में इस निर्गुनिया राम के जरिए ही अद्वैतवादी दर्शन, इकेश्वरवादी मत, एवं मुस्लिम आस्था में समानता लाई जा सकती थी। यही कारण है कि, कबीर की भक्ति में रूपाकार को तरजीह नहीं दी गई है-

निरगुन राम निरगुन राम जपहुँ रे भाई।
अवगति की गति लखि न जाई।।
चारि वेद जाके सुमृत पुराना।
नौ व्याकरण मरम न जाना।।"

कबीर के निर्गुण राम की अवधारणा भक्ति आंदोलन की एक क्रांतिकारी एवं अद्वितीय उद्भावना है। इस शोधालेख के जरिए हम कबीर के निर्गुण राम, उसकी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करेंगे तथा उसके महत्व को समझने का प्रयास करेंगे।

मूल आलेख :- भक्ति आंदोलन अपने समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। यह आंदोलन मध्ययुगीन समस्त रुढ़ियों और जड़ताओं के विरुद्ध सदियों से कुंठित, शोषित, प्रताड़ित एवं उपेक्षित जन की मुक्ति का उदघोष था। पहली दफे जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग, लिंग से परे एक मानव धर्म और मानव संस्कृति की स्थापना की परिकल्पना की गई। जन्म जन्म- जन्मांतर से उपेक्षित, वंचित, शुद्र,अन्त्यज और मुसलमानों की कैसी पंक्ति प्रस्तुत हुई जो निम्नवर्गीय आम आवाम की पीड़ा, व्यथा उसकी इच्छा- आकांक्षा को पहली बार वाणी दी। गजानन माधव मुक्तिबोध के शब्दों में, "भक्ति आंदोलन का जनसाधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ, उतना किसी अन्य आंदोलन का नहीं। पहली बार शूद्रों ने अपने संत दिए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर, रैदास,सिपि, सेना, दादू, नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज बुलंद की।"[1] रामानुज और रामानंद ने "जाति पाति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि को होई"के तर्ज पर वैष्णव धर्म की परंपरागत जड़ व्यवस्था की नई व्याख्या करते हुए भगवत भक्ति का अधिकारी निचले तबके के शूद्रों, चांडालों व मुसलमानो तक को भी माना और इन्हें दीक्षित भी किया।सवर्ण, शूद्र, चांडाल सभी को गले लगाया और 'राम' नाम का मंत्र देते हुए सबको समान निष्ठा तथा समान लक्ष्य के एक सूत्र में बांध दिया। रामानंद ने 'राम' नाम का जो बीज मंत्र अपने शिष्यों को दिया उसके दो रूप थे- सगुण और निर्गुण। उनकी शिष्य परंपरा में कबीर भी रहे और तुलसी भी । कबीर के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि, " पौराणिक अवतारों को केंद्र में रखकर शगुण उपासना के रूप में, और निर्गुण परब्रह्म जो जोगियों का ध्येय था, उसे केंद्र में रखकर निर्गुण प्रेम भक्ति की साधना के रूप में। पहली साधना ने हिंदू जाति की बाह्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींच कर रसमय में बनाया तो दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया तो दूसरी ने विद्रोह का। एक ने शास्त्र का सहारा लिया तो दूसरी ने अनुभव का।[2] वस्तुतः मध्य काल में उतर भारत में भक्ति आंदोलन की जो स्रोतस्विनी फुटी, कबीर उसकी सबसे ऊंची लहर के समान सामने आए। कबीर ने निर्गुण राम को

सामने रखकर वर्ण- आश्रम व्यवस्था का विरोध किया। उनकी मान्यता थी कि समाज में व्याप्त असमानता और भेदभाव के मूल में वर्ण- आश्रम व्यवस्था है। उन्होंने कहा कि भगवान के समक्ष सभी समान है, कोई भी जाति या वर्ग उच्च या नीच नहीं है। कबीर ने ब्राह्मणवाद को समाज में व्याप्त अंधविश्वास और पाखंड का कारण माना। उन्होंने कहा कि 'पंडित वाद बदंते झूठा'। उन्होंने मूर्ति पूजा को भी ईश्वर की प्रकृति के विरुद्ध बताया भगवान निराकार और निर्गुण है, उन्हें किसी मूर्ति में बंद नहीं किया जा सकता। कबीर संपूर्ण जगत में एक ही परम सत्ता के दर्शन करते हैं। उनकी मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने अपने अनुभूत सत्य की प्रतिष्ठा हेतु धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास एवं सभी प्रकार की संकीर्णताओं पर करारी चोट की। वे अपने पूर्ववर्ती संत रचनाकारों से इस स्तर पर भिन्न हैं कि अप्रिय सत्य कहने में भी कभी कमजोरी नहीं दिखलाई। उन्होंने मानव की समानता के आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए न केवल तत्कालीन मुसलमान शासको को धर्मांधता के लिए फटकार लगाई, बल्कि हिंदुओं को भी उच्च- नीच, छुआछूत और विचार- शून्य घोंग और ढकोसलों के लिए धिकारा। वे घृणा के स्थान पर प्रेम और संघर्ष के स्थान पर समन्वय की बात करते हैं-

"माटी एक सकल संसारा।
बहुविध भंडै गढ़ै कुम्हारा।।
पंचबरन दस दुहिए गाई।
एक दूध देखौ पति आई।।
कहै कबीर संसा करि दूरि।
त्रिभुवन नाथ रहया भरि पूरि।।"

डॉ. राजकुमार वर्मा ने लिखा है कि, "जनता की धर्मान्धता और शासको की नीति के कारण कबीर के जन्म काल के समय में ही हिंदू- मुसलमान का विरोध बहुत बढ़ गया था। धर्म के सच्चे रहस्य को भूलकर कृत्रिम विभेदों द्वारा उत्तेजित होकर दोनों जातियां धर्म के नाम पर अधर्म कर रही थीं। ऐसी स्थिति में सच्चे मार्ग के प्रदर्शन का श्रेय कबीर को जाता है।"[3] कबीर कहते हैं:-

"कह हिन्दू मोहिं राम पियारा,
तुरुक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए,
मरम न काहू जाना।"

कबीर के राम की दृष्टि में मानव मात्र एक समान है। वह जात-पात, कुल, वंश, रक्त और नस्ल के आधार पर मनुष्य को मनुष्य से बांटने के प्रबल विरोधी थे। उनका विचार था कि सबसे पहले अल्लाह ने जो प्रकाश उत्पन्न किया उसी से समस्त जगत निर्मित हुआ। फिर, यहां कौन भला कौन मंदा है। सभी कुदरत के बंदे हैं। स्रष्टा सृष्टि में एवं सृष्टि स्रष्टा में व्याप्त है-

" लोका जनि न भूलौ भाई,
खालिक खलक, खलक महि खालिक,
सब घट रहया समाई ।
अल्लाह एकै नूर उपाया,
कुदरति के सब बंदे,
एक नूर तैं सब जग कीआ
कौन भले कौन मंदे।।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना ठीक लगता है कि, " कबीर के तत्वग्राही व्यक्तित्व ने सभी मतवादों

और साधनाओं से जीवन के मानवतावादी दृष्टिकोण के उपयुक्त मूलभूत तत्वों को अपना लिया था। वास्तव में कबीर सभी जातियों,धर्मों, और संप्रदायों के सामान्य जन से एकात्म भाव का अनुभव करते थे।"[4]

दरअसल कबीर ने जो समाज देखा था, उसमें नाना प्रकार की विषमताएं थीं।वर्णाश्रम व्यवस्था का विकृत रूप सामने था। व्यक्ति की उच्चता और नीचता का मापदंड उसका जन्म और कुल रह गया था। ब्राह्मण चाहे जितना दुराचारी हो, सम्माननीय था, दलित चाहे जितना सदाचारी हो, नीच समझा जाता था। कबीर को अपने राम एवं सदाचार पर भरोसा था। इसलिए वे उच्चकुल उत्पन्न पंडितों से तर्क करते हुए कहते हैं कि, तुम्हें मेरी बात पर भरोसा नहीं है तो नारद,व्यास एवं शुकदेव से जाकर पूछो। उन्होंने कहा पंडितों तुम दुर्बुद्धि के शिकार हो गए हो, जो राम नहीं कहते। वेद पढ़ने का फल तो यह होना चाहिए था कि व्यक्ति सब में राम को देखें:-

"पांडे कवन कुमति तोहिं लागी।
तू राम न जपहिं अभागी।।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे,खर चंदन जस भारा।
राम नाम तत समझत नाहिं, अंत पड़ै मुखि छारा।।"
वेद पढ़या का यह फल पांडे, सब घट देखे रामा।
जनम मरन थैं तौं छूटें, सुफल होंहि सब कामा।"[5]

कबीर अपनी सामाजिक स्थिति के चलते हिंदू- मुसलमानों की धर्मान्धता पर प्रहार करने में सफल होते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है,"वे दरिद्र और दलित थे, इसलिए अंत तक वे इस श्रेणी के प्रति की गई उपेक्षा को भूल न सके।"[6]

कबीर का संपूर्ण जीवन राममय है। कबीर से बड़ा राम भक्त भला कौन हो सकता है-

"कबीर कुत्ता राम का मुतिया मेरा नाउँ,
गले राम की जेवरी जित खीचें तित जाऊँ।"

सवाल उठता है कि तुलसी, कबीर के राम का विरोध क्यों करते हैं? वास्तविकता यह है कि कबीर अपने निर्गुण राम के भरोसे ही तुलसी के वर्ण- आश्रम व्यवस्था पर तीक्ष्ण प्रहार कर पाते हैं, इसलिए उनका विरोध करते हैं ।डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है, " तुलसी के अनुसार सार्थक कविता वही है, जो राम से संबंधित हो रामोन्मुखता तुलसी का सबसे बड़ा जीवन मूल्य है।[7]

कायदे से देखा जाए तो बाल्मीकि से लेकर तुलसी तक के राम के जीवन में अनवरत संघर्ष है, किंतु यह संघर्ष काल्पनिक ज्यादा वास्तविक कम है। दूसरी ओर, कबीर अपने राम के सहारे अपना घर फूंक बीच बाजार में सर पर कफन बांधे अपने तत्कालीन समय और समाज से लोहा लेते हुए नजर आते हैं।

कबीर समाज के निचले तबके से आते हैं, काम उनके दिनचर्या में शामिल है। कबीर के राम आलसी एवं अन्यत्र ईश्वर को खोजने वालों को नहीं मिलते। यह तो प्रेम के वशीभूत हैं।कबीर मंदिर के उस राम को महत्व नहीं देते जो स्वयं मन्दिर में रहता है और आदमी को समाज निरपेक्ष होकर भक्ति करना सिखाता है। कबीर मंदिर के उस पत्थर की मूर्ति से, उस चक्की के पत्थर को अधिक महत्व देते हैं,जो गेहूं को कम से कम आंटे में तब्दील कर देता है। यही नहीं, कबीर धन जोड़ने की माया के तीव्र विरोधी है। वह उतना ही धन चाहते हैं, जिससे स्वयं का पेट भर जाए और अभ्यागत साधु अतिथि भी भूखा ना रहे-

"सांई इतना दीजिए,जामै कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।"

जो व्यक्ति अधिक धन कमाने के चक्कर में पड़कर राम को भूल जाता है वह असफल है। तन और धन का

गर्भ करना मूर्खता है। ऐश्वर्यशाली लोग केवल कुछ दिनों तक अपने नौबत बाजवा सकते हैं कि समय पर काम आएगा, लेकिन मृत्यु के बाद वह धन बेकार पड़ा रहता है, उससे कोई काम नहीं चलता-

"चारि दिन अपनी नौबति चलै बजाई।
इतनुक खटिया गडिले मटिया संगि न कछु लै जाइ।"

इससे साफ हो जाता है कि धन ऐश्वर्य और सांसारिक सफलता कबीर की दृष्टि में निरर्थक है। वह परिश्रम से अर्जित धन को बुरा नहीं मानते, किंतु ईमानदारी से केवल उतना ही धन आ सकता है, जितने में अपना और अपने कुटुंब का पेट भर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के राम उन्हें काम करना सिखाते हैं। निर्गुण भक्तों के यहाँ श्रम महत्वपूर्ण है। रैदास ने लिखा है,

जिह्वा भजै हरिनाम नित,हत्थ करहिं नित काम।
रैदास भए निच्छन्त हम,श्रम चित करेंगे राम।।"[8]

निष्कर्ष:- निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि कबीर के निर्गुण पंथ में नानक पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने कबीर की भांति 'ना हिंदू ना मुसलमां' की जमीन पर खड़े होकर सत्य का प्रचार किया, जबकि नानक उच्चकुल उत्पन्न थे। महाराष्ट्र में नामदेव ने मनुष्यता की इसी सामान्य भूमि को स्वीकार कर अपनी बातें कहीं और इसी परंपरा में रैदास भी सामने आए। चित्तौड़ की उच्च कुल की राजरानी मीरा ने रविदास को अपना गुरु स्वीकारा। नामदेव, कबीर, नानक, रविदास, दादू, मलूकदास, मीरा की भक्ति की वह धारा है जो एक ही परम तत्व को सामने रखकर अपने समय के समाज में आदमीयत की तलाश करती है। कबीर के निर्गुण राम वह ताकत हैं जिसके जरिए उन्होंने मनुष्य एवं मनुष्यता के बीच भेद करने वाली शक्तियों का जमकर विरोध किया। कबीर ने एक ऐसी मानव संस्कृति की परिकल्पना हमारे सामने रखी, जो आज भले ही हमारे लिए काम्य में बनी हुई हो, किंतु जिसकी ओर बढ़ता हुआ मनुष्य का एक-एक चरण, ऐसी हजार यात्राओं से बढ़कर है जो कुछ मनुष्यों द्वारा कोटि-कोटि मनुष्यों को कुचलते हुए अपनी शक्ति तथा वैभव का विस्तार करने के लिए की जाती है। एक मानव धर्म, एक मानव समाज और एक मानव संस्कृति का सपना ही कबीर के 'राम' की परिव्यापक अवधारणा है।

संदर्भ सूची:-

01. नई कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ संख्या- 88.
02. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 183.
03. कबीर, प्रकाशन विभाग,नई दिल्ली, षष्ठम संशोधित संस्करण- 2000 ई0, पृष्ठ संख्या- 110.
04. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
05. आजकल, कबीर विशेषांक, अप्रैल,1999 अंक, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-09.
06. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।
07. लोकवादी तुलसीदास, डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या -11.
08. आजकल, अप्रैल, 1999 अंक,प्रकाशन विभाग,नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 10.
09. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या- 57.

•